मेरे प्रिय आत्मन्,

मैं एक अलौकिक आनंद का अनुभव कर रहा हूँ। एक अलौकिक शांति और प्रकाश मुझे दिखाई देता है। मनुष्य के जीवन में सामान्यतः जो अँधेरा भाग्य में मिलता है, उसके बीच, उस पूरे अँधेरे के बीच मुझे प्रकाश की एक किरण भी दिखाई देती है, और उस ज्योति के सम्पूर्ण होने की बात आपसे कहने का मेरा मन है। मैं उस ज्योति के बीच में उन सारे धर्मों के प्रयोजन को देख पाता हूँ, और उस ज्योति को विकसित करने और परिपूर्ण क्षमता तक पहुँचा देने में मुझे मानव के जीवन की परिपूर्णता भी दिखाई देती है। मनुष्य के जीवन में, उसकी जीवन यात्रा में यदि कोई दिव्य ज्योति का प्रादुर्भाव न हो तो सब व्यर्थ हो जाता है, तो सबके बीच भी मनुष्य दरिद्र हो जाता है, तो सबके बीच भी, सारी समृद्धि के उपस्थित होने पर भी, उसके भीतर अर्थ और उसके भीतर जीवन और प्राण विकसित नहीं हो पाते हैं।

मैं जो भी उस विषय में कहने को हूँ, वो कोई शास्त्र पढ़ने की बात नहीं है। मैं जो भी आपसे कहने को हूँ वह कोई बौद्धिक उपदेश नहीं है। मैं जो भी आपसे कहने को हूँ, उसे देख रहा हूँ और यह भी मुझे प्रतीत होता है कि आप भी देख सकते हैं। कोई भी मनुष्य जो जीवित है और कोई भी मनुष्य जो भीतर अपने एक दिव्य चेतना का धनी है, उसे देखने का हकदार है। और शास्त्रों से, और अध्ययन और मनन से, और बौद्धिक खोज से उसे नहीं देखा जा सकता है। उसे सिर्फ परिपूर्ण मौन में और शांति में देखना होता है। उस प्रकाश को, जो जीवन का केन्द्र है, और उस जीवन शक्ति को जिसके अभाव में हम मृत हो जाते हैं और जिसके अभाव में हम मिट्टी हो जाते हैं और जिसके अभाव में हम 'ना कुछ' में मिल जाते हैं, उस ज्योति को, उस प्रकाश को प्रत्येक व्यक्ति देख सकता है। लेकिन देखने के लिए मौन की, शांति की, शून्य की भूमिका अनिवार्य है। निःशब्द मौन में उसे अनुभव किया जाता है, इसलिए बौद्धिक अध्ययन और शास्त्र, परागम और पुराण उस तक नहीं पहुँचा सकते हैं। उन्हें पढ़कर कोई आत्मविद नहीं हो सकता है। उन्हें पढ़ लेने मात्र से कोई अपने को जानने वाला, अपने से परिचित, आत्मज्ञान से युक्त नहीं हो सकता है। इसलिए भारत में दर्शन का अर्थ अध्ययन से, बौद्धिक विचार और विवेक से प्राप्त उपलब्धियां नहीं हे। भारत में दर्शन का अर्थ है एक नये चक्षु को उपलब्ध कर लेना, एक ऐसी आंख को उपल्बध कर लेना जिससे उसे भी देखा जा सके जिससे हम सब कुछ देखते हैं।

साधारणतः हम सारा जगत तो देखते हैं। साधारणतः मैं आपको देखता हूँ, दीवारों को देख रहा हूँ, और सब देख रहा हूँं जो मुझसे पराया है। लेकिन एक, जो सब को देख रहा है, अनदिखा रह जाता है। हमारी साधारण आँखें उसे नहीं दिखा पातीं, जो सब देखने का केन्द्र है। जहाँ से सारा दिखना संभव हो रहा है, अगर वही अनदिखा, अपरिचित, अज्ञान और अँधेरे में डूबा रह जाए, तो जीवन शांति को, परम आनंद को उपलब्ध नहीं हो सकता है। आत्म अज्ञान दुख के जन्म का कारण हो जाता है। और आत्म अज्ञान जीवन में मिथ्या प्रतिक्रियाओं का, जो निरंतर दोहरे रूप में लौट कर दुख लाती हैं, उनका स्त्रोत बन जाता है। और आत्म अज्ञान अपने ही हाथों, हमारे ही भीतर अपने ही शत्रु को पैदा कर देता है।

तीर्थंकर महावीर ने एक बात कही है। उन्होंने कहा है कि आत्मा ही मित्र है। आत्मा ही शत्रु भी है। मैं इसे पढ़ता था, ये मुझे दिखने लगा कि यह सच है। इसमें गहरे सत्य को प्रकट किया गया है। हम अपने प्रति अज्ञान से भरे हों तो अपने ही शत्रु हो जाते हैं। हम अपने प्रति ज्ञानयुक्त हो जाएं, मैं अपने से ही परीचित हो जाऊँ तो अपना ही मित्र हो जाता हूं। और अपना ही शत्रु होकर कौन सुख को, आनंद को उपलब्ध कर सकेगा?

अपना शत्रु होकर तो सिवाय दुख के, और सिवाय आत्म-उत्पीड़न के हम क्या पैदा क्या कर सकेंगे? और सारे मनुष्य पूरे जीवन अपने ही शत्रु बनकर काम करते रहते हैं। मैं देखता हूँ, लोगों के जीवन को देखता हूँ, वे चौबीस घंटे अपने दुख की आग में जलते हैं। अपने हाथ से, अपने ही द्वारा, अपने ही जीवन पर प्रहार कर रहे हैं। प्रतिक्षण वे आत्मघात में संलग्न हैं। यह आत्मघातक स्थिति क्रोध से, चिंता से, संताप से उत्पन्न होती चली जाती है। अहंकार से, मिथ्या अभिमान से घनी होती चली जाती है। मोह से, माया से, लोभ से गहरी होती चली जाती है और हम अपने ही जीवन पर अपने ही हाथों घाव पैदा करते चले जाते हैं। फिर पूरा जीवन दुख से भर जाता है और अंधेरे से दब जाता है, और तब कोई मार्ग नहीं दिखाई देता है, उसके पार उठने का।

गौतम बुद्ध ने अपने प्रवचनों में चार आर्यसत्यों की बात कही है। उन्होंने कहा है- एक आर्यसत्य है- मनुष्य का जीवन दुख है। दूसरा आर्यसत्य है कि मनुष्य के जीवन के दुख के पीछे कारण हैं। तीसरा आर्यसत्य है कि उन कारणों को दूर करने के उपाय हैं। चौथा आर्यसत्य है कि उन कारणों को दूर करके एक मुक्त, आनंद की स्थिति है, निर्वाण है, मोक्ष है। बुद्ध के ये चार आर्यसत्य सारे जगत में विख्यात हो गए हैं। लेकिन मैं एक बात कहता हूँ। मुझे पाँचवां आर्यसत्य भी दिखना शुरू हुआ जिसकी कोई चर्चा बुद्ध ने नहीं की है। और वह पाँचवां आर्यसत्य उन चारों आर्यसत्यों से पहले है। और वह पाँचवा आर्यसत्य प्रथम है। वो है, उसके बाद ये चार हैं। वो पाँचवाँ या प्रथम आर्यसत्य है कि मनुष्य की इतनी दुख की स्थिति भले ही हो लेकिन मनुष्य उस दुख की स्थिति के प्रति जागरूक नहीं है। ये दुख और संताप कितना ही गहरा हो, और हमारा जीवन कितनी ही निराशा, अनिश्चितता और अस्थिरता, असहाय अवस्था में डूबा हो, हमें उसका कोई पता नहीं है। हम कुछ ऐसे मूर्च्छित और बेहोश हैं कि प्रतिक्षण जो दुख हमें घेर रहा है, हम कुछ ऐसे नशे में हैं कि उस दुख को देख नहीं पाते हैं।

हमारी आँखें भविष्य की आशा में लगी रहती हैं। हमारी आँखें भविष्य पर टिकी रहती हैं। और वर्तमान का दुख हमें घेरे रहता है और निकलता जाता है। और आपको ज्ञात हो भविष्य कभी भी आता नहीं है। भविष्य एक मिथ्या प्रवचंना है जो कभी भी उपलब्ध नहीं होता, कल कभी भी आता नहीं है और हम कल पर अपनी आशा को टिकाए रखते हैं और आज का दुख उस आशा के नशे में भूला रहता है। प्रत्येक व्यक्ति कल के लिए जी रहा है, और जो कल के लिए जी रहा है वह अज्ञान में है। क्योंकि कल की कोई सत्ता नहीं है। वर्तमान की सत्ता है। वर्तमान की पीड़ा के प्रति हम मूच्छिर्त हैं। इसे मैं प्रथम आर्यसत्य कहता हूँ, प्रथम महान सत्य कहता हूँ, जिसे समझ लेना जरूरी है, जिसको समझे बिना कोई भी व्यक्ति धर्म के प्रति वास्तविक रूप से जिज्ञासा से नहीं भर सकता है।

यह मनुष्य के जीवन का पहला सत्य है कि घने दुख के बीच, मृत्यु के बीच, उसे होश नहीं है, उसे बोध नहीं है कि क्या हो रहा है। शायद ही... शायद ही उसे दिखता है कि मैं भी कभी मरूंगा। मैं रोज लोगों को मरते हुए देखता हूँ। मेरे कुछ मित्र चल बसे, उन्हें पहुँचाने मरघट तक गया। वहां मैंने और लोगों को देखा। वे एक मृतक को ले गए। उसके शव को दफना दिया या जला दिया। फिर वापस लौट आए। लेकिन उनमें से शायद ही किसी को यह बोध हुआ कि जेसे आज उस एक व्यक्ति के शरीर से कुछ ज्योति विलीन हो गई, एक जीवन नष्ट हो गया, एक शरीर धूल में मिल गया और लपटों में समाप्त हो गया, वैसे ही कल उनका भी हो जाने को है। शायद ही कोई मनुष्य इस जगत में यह जान पाता है कि मैं भी मरूंगा। शायद ही उनको कभी दिखता है, साफ-साफ और जलते हुए बोध के साथ, कि मेरी भी मृत्यु है। यह ना दिखना गहरी मूर्च्छा का सबूत है। इसका अर्थ है कि हम मूर्च्छित हैं। अगर मृत्यु जैसा सत्य भी नहीं दिखता है, तो हम बहुत गहरे नशे में हैं।

धर्म की शुरुआत इस मूर्च्छा से जागने से होती है। जो व्यक्ति मृत्यु के प्रति सचेत हो जाएगा वह धार्मिक हुए बिना नही रह सकता। जो व्यक्ति इस सत्य को देखने लगेगा कि चारों तरफ जीवन अतल कोरेपन से और

मृत्यु से भरा है। असुरक्षित, अपरिचित मार्ग, जहाँ कोई सहारा नहीं है। हम इस बेसहारा स्थिति को देखने के बजाए इसे नए-नए उपकरणों से भरते रहते हैं कि कहीं अपने भीतर का अतल खालीपन, अर्थहीनता, प्रयोजन-शून्यता दिखाई ना दे जाए। मित्रों से, धन से, संपत्ति से, यश से, अहंकार से इसे भरते रहते हैं। इस अंधेरे को ढाँकते रहते हैं। इस पर कागज चिपकाते जाते हैं। यह खोल कहीं से दिखाई ना पड़े। यह अंधेरा कहीं से प्रकट न हो जाए। इसलिए चौबीस घंटे अपने को व्यस्त रखते हैं--सुबह से शाम, कि कहीं अकेलेपन में अपने से सामना ना हो जाए। कहीं किसी क्षण में अपने सामने न खड़े हो जाएँ। कहीं किसी क्षण में यह सारा दुख और संताप, यह मृत्यु दिखने न लगे। इसलिए चौबीस घंटे अपने को, कृत्रिम रूप से ना मालूम किन-किन आयोजनों में भरे रहते हैं। एक क्षण को विराम मिल जाए तो कठिनाई होती है। एक क्षण को खाली होने का, शांत बैठने का मौका मिल जाए, तो तकलीफ होती है। रेडियो चला लेंगे, अखबार पढ़ेंगे। बात करेंगे और अगर कुछ और उपकरण नहीं होगा तो बैठकर मन में विचार करेंगे, कल्पनाएं बाँधेंगे और ताश के महल खड़े करेंगे और उनमें अपने को भुला देंगे और उलझे रहेंगे।

प्रत्येक व्यक्ति जो व्यस्त है, उस व्यस्तता के पीछे पलायन है--अपने से पलायन, अपनी वास्तविक स्थिति न दिख जाए, इस डर से, इस भय से हम भागे हुए हैं। चौबीस घंटे हम अपने से भागे हुए हैं, अपने से दूर हैं, और हमारी सारी व्यवस्था, हमारे परिवार, हमारे प्रियजन, उन सब में भी हम केवल अपने को भुलाने का उपाय खोजते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने को भुलाने का उपाय खोज रहा है। अपने को भूल जाए, अपने को न देखे। लेकिन यह पलायन काम नहीं देता है। ये पलायन कितने दिन काम देगा? मृत्यु की चोट सब तोड़ देती है, और सारे प्रियजन, और सारे संबंध, और सारी भरावट टूट जाती है एक चोट में, और सारे ताश के महल हवा के झोंके में गिर जाते हैं। और तब दिखता है कि जीवन व्यर्थ हो गया है। और तब दिखता है कि व्यर्थ के झूठे सपनों में अपने को भुलाए रखा, और एक अवसर मिला था जिसमें शायद कुछ होना संभव हो सकता था, उसे पानी में गँवा दिया है और जीवन की पूरी की पूरी अवसर की नदी व्यर्थ के मरूस्थल में खोकर समाप्त हो गई है। वह उस सागर को नहीं पा सकी है। जैसे कोई नदी मरूस्थल में खो जाए और सागर तक न पहुँच सके, वैसा हमारा जीवन है। व्यर्थ की क्रियाओं के मरूस्थल में हम खो गए हैं और विराट तक, और चरम तक, और उस जीवन तक, जिस तक पहुँचे बिना कुछ सार्थक नहीं है, कोई आनंद को उपलब्ध नहीं होता, उस दिशा में हमारा मार्ग भटक गया है।

धर्म सबसे पहले हमें हमारे इस दुखद, असुरक्षित, असहाय, संतापग्रस्त स्थिति के प्रति जगाना चाहता है। धर्म हमें हमारी इस वास्तविक स्थिति के प्रति होश से भरना चाहता है। धर्म का पहला सत्य इसलिए जीवन के दुख के प्रति अमूर्च्छा को, जागृति को उपलब्ध करना है। इस अमूर्च्छा के प्रति जागना हो तो क्या करना होगा? क्योंकि इस अमूर्च्छा के प्रति जागे बिना, इस अमूर्च्छित जीवन को पाए बिना, जीवन के इस दुख और लपटों से घिरे हुए स्वरूप, और चारों तरफ मृत्यु से भरे हुए रूप के प्रति जागे बिना कोई व्यक्ति आत्मज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सकता है।

एक ही बात मैंने सारी मनुष्य जाति के इतिहास में, जिन जिन लोगों को कुछ दिखा है, उनको पढ़ कर जानी। एक ही बात यूनान में सुकरात कहता है, अपने को जानो! एक ही बात उपनिषद के ऋषि भी कहते हैं- आत्मज्ञान से भरो। एक ही बात गौतम बुद्ध, वर्धमान महावीर और वही बात कनफ्यूशियस और लाओत्से, और वही बात जरथ्रुस्त्र, और मोहम्मद, और ईसा, एक ही बात कहते हैं, अपने को जानो! और वही बात हमारा धार्मिक उपदेशक भी दोहराता है। आत्मज्ञान को जानो, आत्मज्ञान को पाओ। लेकिन सवाल उपदेश का नहीं है। यह कह देने भर से कि अपने को जानो, कुछ हल नहीं होता। और बड़े-बड़े अक्षरों में मंदिरों पर लिख देने से,

और बड़े बड़े अक्षरों में प्रचार करने से, और उपदेश दे देने से कि अपने को जानो, कोई अपने को जान नहीं लेता है।

आत्मज्ञान बातचीत से उपलब्ध नहीं हो सकता। उसकी विधि को जानना होगा। उसके विज्ञान को समझना होगा। और अगर किसी भी चीज़ के विज्ञान को जानना है, यह जानना होगा कि यह आत्म-अज्ञान क्यों है? हम अपने जीवन की स्थिति के प्रति मूर्च्छित क्यों हैं? उस मूर्च्छा में कौन से मूल कारण, कौन से मूल हेतु हैं, अगर यह न समझा जाए तो इससे मुक्त भी हुआ नहीं जा सकता है।

एक कहानी मुझे स्मरण आती है। गौतम बुद्ध एक सुबह अपने संघ में प्रवचन को गए थे। उनके भिक्षु देखकर बहुत हैरान हुए। बुद्ध अपने हाथ में एक रेशमी रूमाल लेकर आए थे। उनके भिक्षुओं ने कभी किसी चीज़ को लेकर उन्हें आते हुए संघ में नहीं देखा था। भिक्षु गौर से देखने लगे कि बुद्ध आज क्या लेकर आए हैं? बुद्ध अपने स्थान पर बैठे। उन्होंने प्रवचन शुरू नहीं किया। उन्होंने रूमाल को उठाया। उसमें एक गाँठ लगाई और भिक्षुओं से बोले- भिक्षुओ, देखते हो! ये रूमाल मैं अभी लेकर आया था, अब मैंने इस पर एक गाँठ बाँधी है। मैं तुम से एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि यह रूमाल वही है या दूसरा हो गया है?

एक भिक्षु ने खड़े होकर कहा--प्रभु, एक अर्थ में रूमाल बिल्कुल वही है क्योंकि गाँठ बंध जाने से रूमाल के स्वरूप पर कोई अंतर नहीं आया। और, एक अर्थ में रूमाल बिल्कुल बदल गया क्योंकि जो रूमाल बिना गाँठ का था अब वो गाँठ से युक्त हो गया है।

बुद्ध ने कहाः भिक्षुओ, एक प्रश्न और मैं पूछता हूँ--अगर इस रूमाल की गाँठ खोलनी हो तो क्या करना होगा? अगर इस रूमाल की गाँठ को फिर से खोल देना हो तो क्या उपाय करना होगा?

एक भिक्षु ने कहा कि अगर रूमाल की गाँठ को खोलना है तो सबसे पहले ठीक से जानना होगा कि गाँठ बांधी कैसे गई है, गाँठ के बंधने का ढंग क्या है? अगर गाँठ का बँधना समझ में आ जाए तो खोलने की बात कठिन नहीं है। लेकिन अगर गाँठ का बँधना समझ में नहीं आए तो हो सकता है, खोलने की चेष्टा, गाँठ को और बाँध दे--अगर ऐसे रूमाल को खींचें कि गाँठ और बँधती जाए। और गाँठ जितनी बँधती जाती है उतनी छोटी होती चली जाती है, और उसका दिखना कठिन होता चला जाता है।

बुद्ध ने कहा ऐसे ही मनुष्य के स्वरूप पर कोई गाँठ बँधी हुई है। उस गाँठ को जानना होगा, वह कैसे बँध गई है और जान लेने के द्वारा ही उस गाँठ को खोलने का उपाय भी दिख जाता है। और भी एक आश्चर्य की बात है कि रूमाल की गाँठ को जानने के बाद कि वह कैसे बँधी, खोलने के लिए कुछ करना भी नहीं होगा। आत्मिक जीवन में और भी सरलता है, ये ठीक से जान लेना कि गाँठ कैसे बँधी है और बहुत हैरानी होती है, इसे जानते ही गाँठ अपने से खुल जाती है। गाँठ को और अलग से खोलना नहीं होगा। ज्ञान ही मुक्ति बन जाता है।

कौन सी गाँठ बंधी है मनुष्य पर जिससे वह अपनी दुख की स्थिति के प्रति जाग नहीं पाता? कौन सी गाँठ बंधी हे जिससे मृत्यु के प्रति जाग नहीं पाता? कौन सी गाँठ बंधी हे, जिससे जीवन को खो देता है सपनों में, और उस सत्य के प्रति आकांक्षा से नहीं भर पाता है? एक ही गाँठ है, उस गाँठ का नाम सबको परिचित है। लेकिन कभी उसे इस भांति देखने समझने और उसके भीतर वैज्ञानिक दृष्टि को उपलब्ध करने का प्रयास नहीं किया है। उस गाँठ का नाम अहंकार है। उस गाँठ का नाम 'मैं' का बोध है। उस गाँठ का नाम एक मिथ्या व्यक्तित्व है।

यह तो निरंतर सुना होगा, सदियों से यह बात कही गई है कि जो आत्मज्ञान को पाना चाहता है उसे अहंकार को छोड़ना होता है। जो 'मैं' के भाव से भरा हुआ है वह आत्मज्ञान को नहीं पा सकता है। क्यों? यह 'मैं' बाधा क्यों है? यह 'मैं' इसलिए बाधा नहीं है कि 'मैं' की कोई दीवार खड़ी हो गई है, कि 'मैं' का कोई पत्थर

अटका हुआ है। मैं इसलिए बाधा है, कि 'मैं' के माध्यम से हमने एक मिथ्या व्यक्तित्व खड़ा कर लिया है। और जो वास्तविक है... जब तक मिथ्या को हम पकड़े हुए हैं, तब तक वास्तविक को नहीं जाना जा सकता है। हमने भ्रांति से, और भ्रांति के पीछे कारण है, एक मिथ्या व्यक्तित्व को खड़ा दिया है। अगर मैं हाथ में जलती हुई लकड़ी लेकर जोर से घुमाऊँ तो आप को आग का एक गोला, एक वृत्त दिखाई पड़ेगा। एक गोल घूमता हुआ वृत्त दिखाई पड़ेगा लेकिन वह गोल घूमता हुआ वृत्त नहीं है। केवल आग की जलती हुई लकड़ी घूम रही है। लेकिन आपको दिखाई पड़ेगा कि गोल वृत्त आग का बना हुआ है। यह वृत्त कहीं है नहीं लेकिन केवल दिखाई पड़ रहा है। यह लकड़ी इतनी तेजी से घूम रही है, वह जलता हुआ अंगारा है, तेजी से जा रहा है। इसके पहले कि बीच के अंतराल दिखें, गोला पूरा हो जाता है। इससे पहले कि आंख के चित्र पर से, आपके मन के पर्दे पर से उस अंगार का एक चित्र मिटे, दूसरा चित्र उसके ऊपर आ जाता है। यह इतनी तेजी से घूम रहा है कि पूरा वृत्त बन गया है। जहां वृत्त नहीं है वहां वृत्त दिखाई दे सकता है।

ऐसे ही तीव्रता से घूमते हुए विचारों ने अहंकार को पैदा कर दिया है। अहंकार कहीं है नहीं। 'मैं' की कहीं कोई सत्ता नहीं है। 'मैं' की कोई वास्तविक सत्ता नहीं है। लेकिन मन पर तेजी से घूमते हुए चित्र और विचार के बीच में कोई अंतराल नहीं है, इतनी तेजी से घूम रहे हैं, उतनी तेजी से घूमने के कारण पूरा एक वृत्त मालूम पड़ता है। इस पूरे वृत्त का नाम 'अहंकार' है। इस पूरे वृत्त के कारण यह भाव पैदा हो जाता है कि 'मैं' हूँ। विचारों के कारण, बहुत से विचारों के कारण यह भाव पैदा हो जाता है कि कोई विचारक भी है। बहुत से कर्मों के कारण यह भाव पैदा हो जाता है कि कोई कर्ता भी है। निरंतर, प्रतिक्षण विचार से भरे हैं, इसलिए विचारक की भ्रांति पैदा हो जाती है। प्रतिक्षण हम कर्म से भरे हुए हैं इसलिए कर्ता की भ्रांति पैदा हो जाती है। कर्ता और विचार का केंद्र अहंकार के रूप में विकसित हो जाता है।

सच्चाई जबकि इसके बिल्कुल विपरीत है। आप एक भी विचार करते नहीं है, विचार आप पर से घूमते हैं। इस भ्रांति को मन से छोड़ दें कि आप विचार करते हैं। आपने अपने जीवन में एक भी विचार नहीं किया है। एक भी विचार आपने नहीं किया है, विचार आप पर घूमते हैं, ग्रंथों से आते हैं, भाषणों से आते हैं, सुनने से आते हैं। विचार आपके भीतर प्रवेश कर जाते हैं और घूमते हैं। यह मैं क्यों कह रहा हूँ? अगर झांक कर देखेंगे, किसी क्षण बैठ कर देखेंगे तो पाएंगे कि आपका इनमें एक भी विचार नहीं है। एक भी विचार नहीं जो आप कह सकते हैं मैंने सुना नहीं, मैंने पढ़ा नहीं, फिर भी मेरा है। एक भी विचार आपसे उद्भव नहीं हो पाया। एक भी विचार मौलिक नहीं है जो आप से पैदा हुआ हो। जिसको आप कह सकते हैं 'यह मेरा है', ऐसा एक भी विचार नहीं है। सब विचार आप पर बाहर से आए हैं। इतनी गति से आए हैं कि उनके आने से आपको विचारक होने की भ्रांति पैदा हो गई है। इस भ्रांति से 'मैं' पैदा हो जाता है।

ऐसे ही यह भी आप ख्याल छोड़ दें कि आप कर्म करते हैं। यह दूसरी भ्रांति है। आपने अपने जीवन में एक भी कर्म नहीं किया है। सारे कर्म आप पर हुए हैं। सारे कर्म प्रतिक्रियाएं हैं। अब हम सामान्यतः कठपुतलियों से ज्यादा नहीं, जिन के धागे कोई खींचता रहा है और वे नाचती रही हैं। मसलन, उदाहरण के लिए मैं एक बात कहूं--आप सोचते होंगे कि आप क्रोध करते हैं, लेकिन आपने आज तक क्रोध किया नहीं है, क्रोध हुआ है। जब भी बाहर कोई घटना घटी है, आपके भीतर कुछ प्रतिक्रिया हो गई है, और क्रोध आ गया है। क्रोध का आ जाना इतना यांत्रिक है जैसे मैं बटन को दबा दूं और बिजली का बल्ब जल जाए। बाहर से मैंने आपको गाली दी। मेरी गाली का फेंकना है, कि जैसे बटन दब गई हो वहां यंत्र में, और क्रोध ऊपर आ गया हो। आप क्रोध करते हैं, इस भ्रांति को छोड़ दें। यह तो आप तब तक कह सकते हैं कि मैं क्रोध करता हूँ जब आप चाहें तो करें, जब आप चाहें और ना करें। मतलब, जब आप चाहें और गाली आए और क्रोध ना उठे। जब यह ना करने का विकल्प भी आपके

पास हो तो आप कहने के हकदार हो सकते हैं कि मैंने क्रोध नहीं किया, या मैंने क्रोध किया है। अभी तो आप कुछ भी नहीं करते हैं। बाहर घटनाएं घटती हैं, आपके भीतर प्रतिक्रियाएं हो जाती हैं।

मैं एक छोटी सी कहानी कहूँ। खलील जिब्रान नाम के एक कथाकार थे। उन्होंने एक छोटी सी कहानी लिखी है। उन्होंने एक कहानी लिखी है कि एक राजमहल के करीब एक छोटे से बच्चे ने एक पत्थर उठाया और राजमहल की खिड़की की तरफ फेंका। तो वह पत्थर जो अपने से नीचे के, निकट संबंधी पत्थरों से ऊपर उठने लगा, उसने कहा मैं जरा आकाश की सैर को जा रहा हूँ। वह पत्थर ऊपर उठा, नीचे के पत्थर पड़े देखते रहे, निश्चित ही वह ऊपर चला जा रहा था। वह जाकर महल की खिड़की से टकराया। काँच चकनाचूर हो गया। उसने कहा, मैंने कितनी बार कहा मेरे रास्ते में कोई मत आओ। जो मेरी आड़ बनेगा, वह चकनाचूर हो जाता है।

वह जाकर खिड़की को तोड़कर अंदर गिर पड़ा। फर्श पर जब वह गिरा तो उसने कहा कि बहुत यात्रा की, अब थोड़ा विश्राम कर लें। भवन के संरक्षक को काँच के टूटने की आवाज पहुँची। वह भागा हुआ आया, उसने पत्थर को उठाकर वापस खिड़की से फेंका। जब पत्थर वापस चलने लगा तो उसने कहा, काफी आनंद लिया यात्रा का, अब अपने प्रियजनों के पास लौट चलें। जब वह नीचे गिरता था वह अपने मित्रों से बोला कि मैं लौट आया। लंबी यात्रा थी, बड़ी सुखद थी।

यह छोटी सी कथा है- एक पत्थर की यात्रा की। और यह कथा पत्थर की यात्रा की ही नहीं है, यह मनुष्य के जीवन यात्रा की भी है। आपको पता नहीं है कौन अनजाने हाथ जीवन में आपको फेंक देते हैं? आपको पता नहीं है कि किन अज्ञात शक्तियों के कारण आप जीवन में हैं? और फिर कौन से अनजाने हाथ आपके जीवन में क्रियाओं को, प्रतिक्रियाओं को करवाते हैं? कौन से अनजाने हाथ आपके भीतर क्रियाओं को, प्रतिक्रियाओं को जन्म देते हैं? आपको पता नहीं लेकिन आप यह अहंकार पैदा कर लेते हैं कि 'मैं' कर रहा हूँ। फिर किसी दिन अचानक कौन हाथ आपके प्रकाश को बुझा जाता है, उसका भी पता नहीं है। यह पूरी यात्रा पत्थर की यात्रा से ज्यादा नहीं है।

हमारी कोई क्रिया और हमारा कोई कर्म, जब तक हम आत्मज्ञान को उपलब्ध नहीं, तब तक हम से नहीं हो रहा है। हम तो कुछ शक्तियों के केंद्र में हैं, जो हम से दौड़ रही हैं, बाहर से भीतर आ रही हैं, भीतर से बाहर लौट रही हैं। हम कठपुतलियों की भांति हैं। सारे जगत की शक्तियों के इशारों पर धागे खिंच रहे हैं और हमारा नृत्य चल रहा है। यह जो नृत्य में हम भागीदार बन गए हैं, इस भागीदार बनने में इतनी तीव्र गति है क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं की, कि 'मैं' होने का बोध पैदा हो गया है। उन सारे लोगों ने जो प्रतिक्रियाओं को शांत कर सके हैं, और जो विचारों को शांत कर सके हैं, उन्होंने देखा कि 'मैं' तो कहीं है ही नहीं। जिस दिन जागरण हुआ तो पाया कि 'मैं' तो कहीं था ही नहीं, 'मैं' तो है ही नहीं। 'मैं' कहीं भी आज तक पाया नहीं गया है। आज तक मनुष्य के इतिहास में जिन लोगों ने अपने भीतर की यात्रा की है, उन्होंने पाया 'मैं' नाम की कोई भी चीज वहां नहीं है। इस 'मैं' को हम ना छोड़ें तो वास्तविक स्वरूप तक नहीं उतर सकते।

अहंकार विसर्जन--द्वार है आत्मज्ञान का।

इसी अहंकार के घूमते फिल्म के पर्दे ने हमें अपने से छिपा रखा है। इसी अहंकार की दौड़ में, 'जो नहीं है' उसकी दौड़ में, जो नहीं है उसकी आकांक्षाओं और वासनाओं को तृप्त करने की कोशिश में, हम वर्तमान के दुख को भूले हुए हैं। और आपको ज्ञात हो कि यह अहंकार नहीं है, इससे भी प्रमाणित होता है कि यह अहंकार कभी पूरा भर नहीं पाता। अहंकार दुष्पूर है, वह कभी पूरा नहीं भरता। कितना भी दौड़ें, कितना भी भरें, उसकी वासनाओं को कितना ही तृप्त करें। प्रतिक्षण अतृप्ति की आग उतनी की उतनी ही बनी रहती है और पूरे जीवन काल में अहंकार और उससे जन्म पाई वासनाएँ अतृप्त की अतृप्त बनी रहती हैं। 'जो नहीं है' उसकी तृप्ति कैसे हो

सकती है? जो है ही नहीं केन्द्र, उसको कैसे भरा जा सकता है? जो काल्पनिक है, उसकी वासना की पूर्ति भी कैसे हो सकती है? इसलिए आज तक कोई भी एक व्यक्ति अहंकार को भर नहीं पाया।

मुझे एक स्मरण आता है--जब सिकंदर भारत को जीतने आता था तो यूनान में कोई साधु से मिलने एक गांव में गया था। उस साधु का नाम था- डायोजिनीज। वह एक फक्कड़ साधु था, फकीर था। सिकंदर उस गांव से निकला। उसे खबर मिली कि डायोजिनीज यहां है। वह गांव के बाहर डायोजिनीज से मिलने गया। डायोजिनीज से उसकी जो बात हुई वह एक अमर वार्ता है।

डायोजिनीज ने सिकंदर से पूछा- मित्र, इतनी फौज लेकर कहाँ जा रहे हो?

सिकंदर ने कहा मैं एशिया माइनर को जीतने निकला हूँ।

डायोजिनीज ने पूछा फिर क्या करोगे?

डायोजिनीज सुबह के वक्त, ठंड के दिन थे, अपने झोपड़े के बाहर बैठा हुआ सूर्य की रोशनी ले रहा था। उसने पूछा फिर क्या करोगे?

सिकंदर ने बताया कि भारत को जीतने का इरादा है।

डायोजिनीज ने पूछा, फिर?

सिकंदर ने कहा पूरे जमीन का मालिक होना चाहता हूं।

डायोजिनीज ने पूछा फिर?

सिकंदर ने कहा दूसरी कोई जमीन हो तो उसको भी जीतना।

डायोजिनीज ने अंतिम रूप से पूछा कि उसको जीतोगे तो क्या करोगे?

सिकंदर बोला शांति से, आराम से, विश्राम करने की आकांक्षा है।

डायोजिनीज ने कहा मूर्ख हो! मैं तो अभी आराम कर रहा हूँ। तुम इतनी दौड़ करोगे, तो फिर आराम करोगे और तुम्हें पता है आज तक इस दौड़ का कभी अंत नहीं हुआ है। अगर दूसरी जमीन भी हो, तीसरी जमीन भी हो और हजार दुनियाएं भी जीतनी हो तो भी अहंकार उतना ही अतृप्त रहेगा, जितना कि दौड़ के प्रारंभ में था।

जो नहीं है उसकी तृप्ति असंभव है। जो है ही नहीं वह प्रेत है। जिसका होना ही एक वास्तविक सत्ता नहीं है उसकी तृप्ति होने का कोई प्रश्न ही नहीं। इस अर्थ में हमारी सत्ता, जब तक हम आत्मज्ञान को उपलब्ध नहीं, प्रेत सत्ता है। तब तक हमारा ठीक-ठीक होना नहीं है। तब तक हमारा कोई अस्तित्व नहीं है, हम केवल एक खिलवाड़ हैं। हवा के झोंकों में और उस खिलवाड़ में हमारा जीवन नष्ट हो जाता है। अहंकार और अहंकार से जन्मी हुई वासनाएं पर्दा बन जाती हैं। इसलिए अहंकार विसर्जन मार्ग समझा गया है।

अहंकार के द्वारा गांठ लगी है स्वरूप पर, उस गांठ को खोल देने पर स्वरूप अपनी स्थिति में वापस आ जाता है। मनुष्य की अंतरात्मा में जरा भी परिवर्तन नहीं हुआ है। उसका स्वरूप सदा जैसा था वैसा अब भी है। उसका स्वरूप सत्य और शाश्वत है। किंतु अहंकार की गांठ लग गई है। इस ग्रंथि के विसर्जन और इस ग्रंथि के टूटने को मैं निरग्रंथ होना कहता हूँ।

इस ग्रंथि को तोड़ने को, इस ग्रंथि के विसर्जन को मैं निरग्रंथ होना कहता हूँ। महावीर का एक नाम है निरग्रंथनाथ, ऐसा व्यक्ति जिसकी ग्रंथियां टूट गई हों। और अगर ठीक से समझें तो एक ही ग्रंथि है मनुष्य के ऊपर, और वह उसके अहंकार की है। यह अहंकार की ग्रंथि कैसे टूट सकती है? इस अहंकार की ग्रंथि को तोड़ने के उपाय में जरा भी भूल हुई तो रूमाल और ज़ोर से खिंच जाता है। गांठ और छोटी हो जाती है। और तब उसे देखना कठिन हो जाता है। यह अहंकार की ग्रंथि तोड़ना बहुत ही समझ और विवेक का काम है। बहुत

जागृतिपूर्ण काम है। इस साधना में होश बहुत आवश्यक है। जरा भी बेहोशी हुई तो ग्रंथि और सख्त हो जाती है और ग्रंथि दिखना कठिन हो जाता है।

एक साधारण आदमी का अहंकार तो दिख भी जाता है। एक साधु का अहंकार दिखना कठिन हो जाता है। उसने गांठ को गलत खींच लिया, गांठ छोटी हो गई, दिखना कठिन है। एक सामान्य व्यक्ति को, जो धन की तृष्णा में दौड़ रहा है, जो पद की आकांक्षा में दौड़ रहा है, जो अहंकार तृप्ति के मोटे-मोटे रूप इख्तियार कर रहा है, उसे दिखना कठिन नहीं है कि अहंकार है। लेकिन फिर अहंकार सूक्ष्म होने लगता है, अगर भूल से गांठ खींची गई तो अहंकार छोटा होने लगता है। छोटा होने लगता है तो गांठ दिखाई पड़नी बंद होने लगती है। और जिसको अपने अहंकार की गांठ दिखाई पड़नी बंद पड़ जाए, उसके आत्मज्ञान की संभावना न्यून हो जाती है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात धर्म और साधना के संबंध में एक ही है- अहंकार की गांठ कैसे बंधी, इसे जान लें। कैसे छूट सकती है इसे जान लें। इससे ज्यादा कोई और बात नहीं है।

धर्म का सारा सत्य दो बातों में प्रकट हो सकता है। मनुष्य के चेतना पर अहंकार की गांठ कैसे बंधी है- एक। और यह गांठ कैसे खुल सकती है- दो। इन दो से ज्यादा और कोई बात अगर धर्मों ने कही हो, तो उसका कोई मूल्य नहीं है। इन दो के हो जाने से सब उपलब्ध हो जाता हे।

तो पहली बात जो मैं चर्चा करना चाहता हूँ, अहंकार की गांठ क्यों बंधी है? मैंने कहा कि क्रियाएं हैं। और विचार जो कि निरंतर हमारे भीतर बह रहे हैं, उनके तीव्र आवर्तन के कारण जो नहीं है, उसका होना दिखाई पड़ने लगा है। उस आवर्तन को तोड़ना होगा, उस आवर्तन को पिघलाना होगा। उन विचारों को, क्रियाओं को खाली करके शून्य में उतरना होगा। उस शून्य में उतरते ही अहंकार विसर्जित हो जाता है। उन विचारों के कारण अहंकार पैदा हुआ है। तो विचारों के विसर्जित होने पर, अहंकार भी विसर्जित हो जाता है।

निष्कर्म और निर्विचार, इस स्थिति में उतरना अनिर्वाय है। अगर हम थोड़ा सा देखें, हमारे प्रत्येक दो विचारों के बीच में स्थान है, खाली जगह है। अगर मैं कहूँ, राम आया, तो 'राम' और 'आया' के बीच में स्थान है, रिक्त स्थान है। लेकिन वो हमें दिखाई नहीं पड़ता। हम 'राम' से 'आया' तक कूद जाते हैं। एक विचार से दूसरे विचार तक कूदते रहते हैं। और भूल जाते हैं कि विचारों के बीच में अंतराल है, खालीपन है, शून्य है। दो शब्दों के बीच, दो विचारों के बीच जो खालीपन है उसमें कूद जाना, उसमें डूब जाना, ध्यान में उतरना है। उस अंतराल में कूदते ही, उस शून्य में, उस रिक्त स्थान में उतरते ही दिखता है कि विचार तो गए। दिखता है कि मन तो था ही नहीं। दिखता है कि वह सब तो गया जिससे अहंकार जाना था। और अहंकार-शून्य सत्ता का दर्शन प्रारंभ हो जाता है।

एक साधु था। वह जब मरने को था, उसके आश्रम में पांच सौ और साधु थे, उसने कहा मरने से पहले मैं किसी को नियुक्त कर जाना चाहता हूँ अपने स्थान पर। जो भी व्यक्ति अपने को योग्य मानता हो, जिसे धर्म का सत्य दिख गया है, वह चार पंक्तियों में उस सत्य को लिख कर मुझे दे जाए। अगर मुझे समझ में आया कि उसने जो लिखा वह ग्रंथ से पढ़ी हुई बात नहीं है, उसने जो लिखा वह दर्शन से उपलब्ध हुआ है तो मैं उसे अपने स्थान पर बिठा दूंगा।

पांच सौ साधु थे, लेकिन वे जानते थे कि वह बूढ़ा साधु इतना सरल और शांत था, इतना आत्मिक जीवन को उपलब्ध था कि उसे धोखा देना असंभव था। ग्रंथ से लिए गए विचारों से उसे धोखा नहीं दिया जा सकता था। इसलिए बहुत मुश्किल से विचार किया लेकिन किसी ने हिम्मत नहीं की। एक साधु ने हिम्मत की, उसमें भी इतनी हिम्मत नहीं थी कि वह जाकर सीधा कागज पर लिखकर अपने गुरु को दे आता। वह भी रात को जब गुरु सोया था, उसके दरवाजे पर लिख गया। उसने चार पंक्तियां लिखीं। वे पंक्तियां एकदम सार्थक मालूम होती

हैं। उसने चार पंक्तियां लिखीं कि धर्म का सत्य इतनी छोटी सी बात में है, कि मनुष्य की चेतना, मनुष्य का मन, एक प्रकार का दर्पण है जिस पर विकार की धूल जम जाती है और इस कारण उसमें दर्शन होना बंद हो जाता है। विकार की धूल को हम झड़ा लें, कि दर्पण साफ हो जाए। बस, इतनी ही बात है। इन वाक्यों में कहीं कोई भूल नहीं दिखाई पड़ती। मन एक दर्पण है, उस पर विकार की धूल जम गई है। उस धूल को हम झड़ा दें और दर्पण साफ हो जाए, इतनी ही बात है। इनमें कोई भूल नहीं मालूम होती। ये तो ठीक दिखता है।

लेकिन सुबह जब वह साधु उठा, उसने कहा, यह कचरा शब्द किसने यहां पर लिखे हैं?

ये अजीब सी बात थी। ये पूरे आश्रम में खबर फैल गई कि साधु ने यह कह दिया कि यह कचरा शब्द किसने यहां लिखे हैं? यह खबर आश्रम के भोजनालय में भी पहुंची। वहां बारह वर्ष पहले एक युवक आया था और तब से वो भोजनालय में चावल कूटने का काम करता रहा। बारह वर्ष पहले जब वह आया था और गुरु से जाकर उसने कहा था कि मैं साधु होना चाहता हूँ तो गुरु ने एक बात पूछी थी। उस बूढ़े साधु ने पूछा था, तुम साधु होना चाहते हो या साधु दिखना चाहते हो? अगर दिखना चाहते हो बहुत आसान है, अभी दिखना शुरू हो जाओ, और अगर होना चाहते हो तो चुपचाप भोजनालय में जाकर काम करो। जिस दिन मैं ठीक समझूंगा बुला लूंगा, नहीं ठीक समझूंगा तो वहीं काम करते रहना। चुपचाप, वहीं, जो मैं काम बताऊं कर देना।

बारह वर्ष से वह वहीं था। और बारह वर्षों में ना तो गुरु ने उसे बुलाया और ना ही उसने जाकर पूछा कि क्या बात है! बारह वर्ष तक वह चावल ही कूटता रहा। हिम्मत उसकी अद्‌भुत थी, धीरज अलौकिक था। बारह वर्ष में एक बार भी गुरु ने ना कुछ पुछवाया कि क्या हुआ? ना तो गुरु गया पूछने और ना कोई बात हुई। बारह वर्ष वह चावल कूटता रहा। जब उसके पास खबर पहुंची इस तरह वचन लिखा गया था, लेकिन गुरु ने कह दिया कचरा है, तो उसने कहा कि निश्चित ही कचरा तो है। जिस भिक्षु ने उससे यह कहा था तो उसने पूछा- आप भी कहते हैं यही? बारह वर्ष चावल कूटते रहे। मतलब आप जानते हैं सत्य क्या है?

उसने कहा, मैं जानता हूँ। चाहो तो चलो, लिख दो। मैं लिखना नहीं जानता हूँ; मैं बोल दूंगा तुम लिख देना।

वो चावल कूटने वाला व्यक्ति गया, उसने चार पंक्तियां बोलीं, उन पंक्तियों का अर्थ था जो धर्म को जानता है, वह जानता है मन का कोई दर्पण ही नहीं, धूल जमेगी कहाँ? उसने चार पंक्तियों में ये लिखवाया कि मन का कोई दर्पण ही नहीं, विकार की धूल जमेगी कहां? जो इस सत्य को जानता है वह धर्म को जानता है।

सुबह वह बूढ़ा उठा, उसने कहा जिसने यह लिखा, उसने जाना है। यह शास्त्रीय नहीं है, यह अनुभूति से उपलब्ध है।

जैसे ही इस शून्य में कोई कूदेगा, वह पाएगा कि ना तो कोई मन है, ना अहंकार है, ना कोई दर्पण है, ना तो कोई धूल जमने को स्थान है। निर्विकार आत्मा निरंतर निर्विकार रहा है। शुद्ध आत्मा निरंतर शुद्ध रहा है। वह नित्यस्वरूप आत्मा निरंतर नित्य रहा है। एक क्षण को भी, और एक कण को भी उसमें कोई विकार कभी प्रविष्ट नहीं हुआ है। उस स्वरूप को जानते ही जीवन में क्रांति घटित हो जाती है। एक नए क्षितिज के द्वार खुल जाते हैं। क्षुद्र से विराट में पदार्पण हो जाता है। बूंद से सागर में उठना हो जाता है। ना कुछ से, सब कुछ से संबंध हो जाता है। जो कुछ भी नहीं था, जिसके पास कुछ भी नहीं था, और सपनों के महलों के सिवाय उसकी कोई आकांक्षाएँ नहीं थीं, और जिसने छोटे और व्यर्थ के कंकड़ पत्थरों में जीवन गँवा दिया था, वह विश्व की सारी अमूल्य संपत्ति का मालिक हो जाता है।

इसलिए मैं कहता हूं अहंकार-विसर्जन मार्ग है। और अहंकार-विसर्जन, विचार और क्रियाएं, इनके विसर्जन से संभव होता है। विचार और क्रियाओं ने अहंकार की ग्रंथि बांधी है। इनके पीछे हम उतर सकें, शून्य में

कूद सकें, शांत हो सकें, मौन हो सकें और उस शांत, शून्य, निःशब्द स्थिति में देख सकें, तो ज्ञात होगा। तो ज्ञात होगा कि एक बार भी ना तो जन्म हुआ, एक बार भी ना तो मृत्यु हुई। अमृत यात्री निरंतर नित्य शुद्ध रहा है। इस अमृत यात्री को देखने से जीवन में अमृतमयी शांति और अनंत रहस्य के द्वार खुल जाते हैं। इस सत्य के उद्घाटन के लिये धर्म है और इस सत्य को पाए बिना कोई भी व्यक्ति, चाहे वो कोई भी उपाय करे और प्रयोग करे, जीवन की सार्थकता को नहीं पा सकता है। इसमें कूदना होगा--शून्य में।

शून्य में कूदने में हम भूल कर सकते हैं, और गांठ उल्टी मजबूत हो सकती है। शून्य में कूदने की भूल एक हो सकती है कि हम अतिशय प्रयास से भर जाएं शून्य में कूदने के लिए। अतिशय प्रयास और संकल्प, शून्य में नहीं ले जा सकता। अतिशय प्रयास और संकल्प तो अंहकारजन्य होते हैं। अतिशय प्रयास और संकल्प से जो साधना चलती है, वह अहंकार को और मजबूत कर देती है। इसलिए शून्य में कूदना हो तो संकल्प नहीं, बहुत प्रयास, बहुत चेष्टा नहीं चाहिए। बहुत प्रयासहीन और शांत शिथिलता में, उसमें उतरना होता है। जितने प्रयास-शून्य हो जाएंगे उतना ही उसमें उतर जाएंगे। प्रयास और क्रियाएं हमें अपने से बाहर ले आई हैं। प्रयास और क्रियाओं को छोड़ दें और हम अपने पर पहुंच जाते हैं। किसी ने गाया है, जिन खोजा तिन पाइयां। मैंने उसे गलत कहना शुरू कर दिया है। मैं कहने लगा हूँ जो खोजेगा वह खो देगा क्योंकि समस्त खोज अहंकारजन्य है। खोजने की आकांक्षाएं अहंकारजन्य है।

मैंने कहना शुरू किया है जिन खोया तिन पाइयाँ, जो अपने को खो देगा वो पा लेता है। खोज से नहीं, खो देने से। प्रयास से नहीं अप्रयास से, प्रयत्न से नहीं प्रयत्न छोड़ देने से। प्रयत्न ने और प्रयास ने और चेष्टा ने तनाव और अशांति पैदा की है। उन सब को छोड़ दें, एकदम ढीला छोड़ दें, समस्त प्रयास, समस्त संकल्प, समस्त चेष्टा। और थोड़ी देर को निश्चेष्ट होने में उतर जाएं, थोड़ी देर को इस शून्य में उतर जाएं और उस उतरने से सब कुछ पूरा हो जाएगा।

ऐसा मेरा कहना है, संसार में प्रयास करके पाया जाता है। प्रभु को पाना हो तो प्रयास काम नहीं देते। प्रभु संसार की कोई वस्तु नहीं है। जैसे हम संसार की और चीजें पा लेते हैं प्रयास करके, भ्रांति में मत पड़ना कि हम प्रभु को भी वैसे ही पा लेंगे। जिस तरह हम सारी चीजें पा लेते हैं प्रयास करके, हम उसको नहीं पा सकते जो भीतर बैठा है। प्रयास बाहर चीजें पाने का उपाय है। समस्त प्रयास बाह्य जगत में चीजें पाने के उपाय हैं। इससे इस तर्क में मत पड़ जाना कि भीतर पाना है, उसमें भी प्रयास काम दे देगा। बाहर जाने का मार्ग है प्रयास। प्रयास छोड़कर भीतर पहुंचना हो जाता है। प्रयास छोड़ते जाएं, छोड़ते जाएं, छोड़ते जाएं, छोड़ते जाएं... और जैसे ही प्रयास पूरा छूटता है, तत्क्षण आप अपनी जगह पहुंच जाते हैं। जैसे किसी ने डगाल को वृक्ष की जड़ से खींच लिया हो और वह छोड़ दे और वह डगाल अपने स्थान पर वापस पहुँच जाए। ऐसे ही हमने अपने को बाहर खींच लिया है प्रयास में। छोड़ दें, तो ऊपर पहुंचना हो जाता है। और स्वरूप पर पहुंचकर जिस आनंद के और संगीत के द्वार खुलते हैं और जो नई मौन की वीणा बजने लगती है, वह जीवन में क्रांति बन जाती है।

मेरा मानना है, कोई जीवन के सामान्य सुखों को छोड़कर परमानंद को नहीं पा सकता है। लेकिन परम आनंद की वीणा बजने लगे तो संसार के सारे सुख अपने आप व्यर्थ हो जाते हैं और छूट जाते हैं। मेरा मानना है कि त्याग के द्वारा कोई ज्ञान पर नहीं पहुंचता है, लेकिन ज्ञान के द्वारा त्याग अपने से सध जाता है। अभी मैं आपको अगर एक गीत सुनाऊँ और फिर पास में कोई वीणा पर एक और गीत गाने लगे मधुर, और भी मधुरतर, और भी आनंदपूर्ण, अमृत से भरा, तो आपको अपने मन को उस संगीत की तरफ ले जाना नहीं पड़ेगा। अचानक किसी क्षण में आप पाएंगे कि मन वहां पहुंच गया है। आनंद की तरफ बह जाना मनुष्य का स्वभाव है।

अगर भीतर हम शून्य को तोड़ दें और वहां शून्य की वीणा बजने लगे तो जीवन के सामान, जिन्हें हमने कल तक सुख समझा था, उन्हें छोड़ के, उनसे हटा के, झटक के, मन को वहां ले जाना नहीं पड़ेगा। अचानक पाया जाएगा, हम वहां पहुंच गए हैं। यह पहुंचना सहज हो जाता है, यह समाधि सहज हो जाती है। एक ही बात है, निष्प्रयास के द्वारा शून्य में उतरना। प्रयास किया, गाँठ और बँध जाएगी। जितना प्रयास करेंगे, अहंकार और सख्त, और सशक्त हो जाएगा। प्रयास छोड़कर, प्रयास मात्र को छोड़कर पहुँचना होता है।

एक छोटी सी कहानी, मैं अपनी चर्चा को पूरा करने को हूं।

मैं एक कहानी पढ़ता था, एक जापानी साधु था रिंझाई। उसकी घटना मुझे बहुत प्रीतिकर है, और उसकी घटना से दिख सकता है कि निष्प्रयास, निष्क्रिय, होने से मेरा क्या प्रयोजन है? रिंझाई एक दिन सुबह जब सूरज उगता था, और गाँव में सुंदर प्रभात उतर रहा था, गाँव के बाहर, हरी-भरी धरती पर, एक पहाड़ी पर खड़ा था। गाँव के तीन-चार लोग उस पहाड़ी की तरफ घूमने गए थे। उन्होनें सोचा ये रिंझाई सुबह-सुबह यहाँ क्या करता होगा? वो शांत खड़ा था पहाड़ी के एक किनारे पर, एक पत्थर की शिला के पास। उन सब ने सोचा कि वो क्या करता होगा? एक ने कहा ऐसा मुझे लगता है, उसे देखकर इस दूर के धुंधलके में, उसे देखकर ऐसा लगता है कि शायद कभी-कभी उसकी गाय गुम जाती है, तो शायद पहाड़ी के टीकरे पर खड़ा होकर उस गाय को खोजता होगा। देखता होगा, पहाड़ी में, वन में कि गाय कहां है?

दूसरे ने कहा कि उसकी आकृति को देखकर ऐसा मुझे नहीं लगता। ऐसा नहीं मालूम होता है कि वो किसी को खोज रहा है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वह किसी की प्रतीक्षा में है। कोई मित्र पीछे छूट गया होगा वो उसकी राह देख रहा है।

तीसरे ने कहा कि मैं इससे भी सहमत नहीं हूँ। मुझे तो उसे देखकर लगता है कि वो किसी गंभीरता में, किसी चिन्तन में संलग्न है।

वे तीनों निश्चय नहीं कर सके। उनका विवाद किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सका। वे चलते हुए, घूमते हुए, उस पहाड़ी के किनारे पर पहुँचे जहाँ रिंझाई खड़ा हुआ था। उन्होंने सोचा चलें उससे ही पूछ लें। उन्होंने जाकर कहा--भंते, आप यहां क्या कर रहे हैं?

एक ने पूछा क्या आप अपनी गाय को खोज रहे हैं? रिंझाई ने आँख खोली। उसने कहा नहीं, मैं गाय को नहीं खोज रहा हूँ। उसने फिर आँख बंद कर ली। दूसरे ने पूछा कि ठहरिए, क्या आप अपने किसी मित्र की प्रतीक्षा कर रहे हैं यहां? उसने वापिस आँख खोली और कहा नहीं मैं किसी की भी प्रतीक्षा नहीं कर रहा हूँ। उसकी आँख फिर झप गई। तीसरे ने पूछा फिर आप क्या कर रहे है यहाँ? क्या आप किसी ईश्वर के चिन्तन में, आत्मचिन्तन में, किसी विचार में संलग्न हे। रिंझाई ने कहा- नहीं।

वे तीनों घबरा कर पूछे कि फिर आप क्या कर रहे हैं?

रिंझाई ने कहा--आई एम जस्ट स्टैंडिंग, मैं तो बस खड़ा हुआ हूँ, मैं कुछ कर नहीं रहा हूँ।

थोड़ी सा कल्पना करें। मुझे तो बिल्कुल साफ दिखाई पड़ता है कि कोई सिर्फ खड़ा है और कुछ भी नहीं कर रहा है। ना शरीर में कोई क्रिया है न मन में कोई क्रिया है। एक गहरा सन्नाटा और मौन--शरीर, मन और प्राण पर छाया हुआ है। थोड़ा सा देखें--कुछ भी नहीं कर रहे हैं आप, सब छूट गया है, सब कर्म और सब विचार विलीन हो गए हैं।

उस ना कुछ करने की स्थिति में, उस चेतना की उपलब्धि होती है, जिसे भारत ने आत्मा कहा है। जिसे भारत ने ब्रह्म कहा है। जिसे किन्हीं ने कुछ और नाम दिए होंगे, निर्वाण के, या मोक्ष के। उस बंधनहीन को जानने से मुक्ति हो जाती है। उस बंधनहीन से परिचित होने पर, उस बंधनहीन में उतरने पर, व्यक्तित्व की

समस्त क्षुद्रताएँ, सीमाएं समाप्त हो जाती हैं। इस एक सत्य को पाने के लिए सब धर्म हैं। और जैनों का धर्म तो विशिष्टतः इस एक सत्य पर ही केंद्रित है। जैनों का एक पूरा योग इस एक सत्य पर ही केंद्रित हे।

महावीर ने कहा है, जो निष्कर्म आत्मा को जानता है, वो सब कुछ जानता है। जिसने उस निष्कर्म आत्मा को जान लिया, उसने सब कुछ जीत लिया है। वर्धमान महावीर के वचन हैं, जो उसको जान लेगा वो जीवन में सब कुछ पा लेता है। इस एक खास बात को जान लेने से सब कुछ जान लिया जाता है, और सब कुछ पा लिया जाता है। इस एक के जान लेने पर दुख की घाटियों के बाहर हम हो जाते हैं, और पीड़ा की सीमा के बाहर हम हो जाते है और आनंद का राज हमारा हो जाता है।

ये थोड़ी सी बात मैं आपसे कहा हूँ, कैसे गं्रथियों ने हमें बाँधा है? कैसे गं्रथियों के बाहर उठना हो सकता है? ईश्वर करे दुःख और पीड़ा और मृत्यु के प्रति आप जागें! ईश्वर करे आप में घबराहट भर जाए, और आप अपनी असहाय और असुरक्षित स्थिति के प्रति बैचेन हो जाएं!

ईश्वर करे आप अशांत हो जाएं अपनी स्थिति के प्रति, ताकि शांति के लोक में उठने का विचार पैदा हो सके! ईश्वर करे कि सारा दुःख आपको पकड़ ले और ये सारे जीवन की व्यर्थता आपको पकड़ ले, और आपके सारे पलायन व्यर्थ हो जाएं, ताकि उस अमर-ज्योति को पाने का विचार आप में पैदा हो सके। ये विचार पैदा हो जाए, फिर इसे अन्तिम शिखर तक पहुँचाना कठिन नहीं है। बहुत सरल, बहुत आसान बात है। जो मेरा है, उसको पाना कभी भी, किसी भी सदी में, किसी भी समय में कठिन नहीं हो सकता है। जो मैं हूँ, उस तक पहुँच जाने से आसान, सरल कोई बात नहीं हो सकती है।

फिर मैंने कहा अप्रयास से, शांत मौन से; प्रयास व चेष्टा को विसर्जित करके, कर्म को विसर्जित करके उसे पाना है। इसलिए बात और भी सरल हो जाती है।

कठिनाई तो कर्म में है, अकर्म में क्या कठिनाई होगी? कठिनाई तो अंशाति में है, शांति में क्या कठिनाई होगी? कठिनाई तो प्रयास में है, अप्रयास में क्या कठिनाई होगी? जहाँ सब छोड़कर पहुँचना है उसे सरलतम ही मानना होगा। वह सरलतम है। एक बार यह सरलता दिख जाए तो घटना घट सकती है।

मेरी बातों को प्रीति से, शांति से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं।